॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१०

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीदेवेश्वराचार्यपूज्यपादशिष्यश्रीसर्वज्ञात्ममुनिप्रणीतम्

(पञ्चप्रक्रियासहितम्)

सङ्क्षेपशारीरकम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीसुन्दरदासोदासीनपूज्यपादशिष्यश्रीस्वामिरामानन्दकृत-

भावदीपिकाख्यहिन्दीव्याख्योपेतम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिरामानन्दोदासीनपूज्यपादशिष्यवेददर्शनाचार्य-

महामण्डलेश्वरस्वामिगङ्गेश्वरानन्दमहाभागविरचित-

बृहद्भूमिकासनाथम्

स्वामियोगीन्द्रानन्देन टिप्पण्यादिभिः समलङ्कृत्य सम्पादितम्

प्रकाशक :

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, वाराणसी-२२१००१

ब्रह्मसूत्र में उल्लिखित ऋषिगण

१—आत्रेय—१.	स्वामिनः फलश्रुतेरित्यत्रात्रेयः।	३।४।४४
२—आश्मरथ्य—१.	प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमित्याश्मरथ्यः।	१।४।२०
३—औडुलोमि—१.	आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै परिक्रीयते।	३।४।४५
२.	उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः।	१।४।२१
३.	चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः।	४।४।६
४—काष्णाजिनि—१.	चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेतिकाष्णाजिनिः।	३।१।९
५—काशकृत्स्न—१.	अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः।	१।४।२२
६—जैमिनि—१.	अन्यार्थन्तु जैमिनिः प्रश्नाख्यानाभ्यामपि चैवमेके।	१।१।१८
२.	तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः।	३।४।४०
३.	धर्मं जैमिनिरत एव।	३।२।४०
४.	परं जैमिनिर्मुख्यत्वात्।	४।३।१२
५.	परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि।	३।४।१८
६.	ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः।	४।४।५
७.	मध्वादिष्वसंभवादनधिकारं जैमिनिः।	१।३।३१
८.	शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथान्येष्वितिजैमिनिः।	३।४।२
९.	सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति।	१।२।३१
१०.	साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः।	१।२।२८
११.	भावं जैमिनिर्विकल्पामनानात्।	४।४।११
७—बादरायण—१.	अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैव दर्शनात्।	३।४।८
२.	अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः।	३।४।१९
३.	एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः	४।४।७
४.	तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात्।	१।३।२६
५.	द्वादशाहवदुभयं बादरायणोऽतः।	४।४।१२
६.	पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः।	३।४।१
७.	पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्।	३।२।४१
८.	अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायणः उभयथादोषात् तत्क्रतुश्च।	४।३।१५
९.	भावं तु बादरायणोऽस्ति हि।	१।३।३३
८—बादरि—१.	अनुस्मृतेर्बादरिः।	१।२।३०
२.	अभावं बादरिराह ह्येवम्।	४।४।१०
३.	सुकृत-दुष्कृते एवेति तु बादरिः।	३।१।११

इन आचार्यों का मतवाद संक्षेप में इस प्रकार है:—

(१) आचार्य आत्रेय

महर्षि जैमिनि ने अपने दो सूत्रों[1] में इनका उल्लेख किया है। दोनों स्थानों

१—द्र० वे० सू० ४।३।१८ तथा ६।१।२६।

पर इनके मत को विशेष आदर[1] दिया है, किन्तु ब्रह्मसूत्र मे केवल एक बार इनका मत दिखाकर निराकृत कर दिया गया है । अर्थात् आत्रेय आचार्य का मत है कि अंगाश्रित उपासना कर्म यजमान को स्वयं करना चाहिए, ऋत्विजों से नहीं करवाना चाहिये, क्योंकि उस उपासना के फल का भोक्ता यजमान ही होता है । इस मत के निराकरण में युक्ति दी गई कि यजमान अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए ऋत्विजों को दक्षिणा देकर खरीद लेता है । अतः ऋत्विजों के द्वारा किये गये कर्म का फल भी यजमान को ही मिलता है । इस प्रकार अङ्गाश्रित उपासना कर्म ऋत्विक्-कर्तृक है, यजमान-कर्तृक नहीं—यह बात सिद्ध हो जाती है । जैमिनि-सूत्रों का समर्थन तथा बादरायण का खंडन यह स्पष्ट बता रहा है कि आचार्य आत्रेय पूर्व मीमांसक थे ।

(२) आचार्य आश्मरथ्य

महर्षि जैमिनि ने (जै० सू० ६।५।१६) में इनका मत पूर्वपक्ष के रूप में दिखाकर (जै० सू० ६।५।१७ में) निराकृत कर दिया है; किन्तु महर्षि बादरायण ने उनका खंडन नहीं किया, अपितु उनका मत विशेष दिखाया है कि वे जीव और ब्रह्म का भेदाभेद[2] मानते थे तथा अन्तःकरणरूप प्रदेश में अभिव्यक्त होने के कारण ब्रह्म की प्रादेशिकता[3] का सामंजस्य करते थे । इससे यह निश्चित होता है कि आचार्य आश्मरथ्य वेदान्ती थे ।

(३) आचार्य काष्णाजिनि

आचार्य काष्णाजिनि का नाम भी उभय मीमांसा में आता है । ब्रह्मसूत्र में उल्लेख करते हुए बताया गया है कि वे उपनिषद् के "रमणीयचरण" आदि पदों में चरण शब्द का अर्थ—अनुशय[4] (अदृष्ट) करते हैं और उस आचरण के सौष्ठवासौष्ठव के आधार पर शुभाशुभ योनियों की प्राप्ति मानते हैं । ये भी सम्भवतः वेदांत के आचार्य थे, क्योंकि ब्रह्मसूत्रकार ने अपने मत के समर्थन में प्रमाणरूप से आचार्य काष्णाजिनि का ग्रहण किया है । इतना ही नहीं महर्षि जैमिनि ने उनके मत का (जै० सू० ४।३।१५ में) उल्लेख करके खंडन किया है[5] एवं (जै० सू० ६।७।३६ में) उद्धृत करके वहीं (जै० ४।३।१६ में)